नाली

हिन्दी ADDA

ज़ेब अख्तर

नाली

लगा, जैसे दोनों झगड़ रहे हैं। सदर ओबैस साहब का सिर जोर से हिल रहा था। अल्ताफ चचा बार-बार मेज पर मुक्का मार रहे थे। मेरे कदम तेज हो गए। दुकान में पहुँचने पर देखा कि झगड़ा तो नहीं पर गरमा-गरम बहस जरूर हो रही है। अल्ताफ

चचा कह रहे थे, 'मैं बड़े-बड़े लोगों के कुर्ते सिलता हूँ, लेकिन इतना लंबा कुर्ता कोई नहीं सिलवाता सदर साहब!'

'और लोग जहन्नुम में जाएँ तो क्या मैं भी चला जाऊँ?' ओबैस साहब ने पान की लंबी पिचकारी छोड़ते हुए जवाब दिया - 'मेरे कुर्ते की लंबाई घुटने से नीचे तक होनी ही चाहिए...!'

'ठीक है, मुझे कोई एतराज नहीं है। आप कहेंगे तो मैं टखने से नीचे तक सिल दूँगा, लेकिन फिर आस्तीन का कपड़ा आपको अलग से लाना होगा।'

'आप सिर्फ इतना बताइए कि और कितना कपड़ा लाना होगा... मैं किसी के हाथों भिजवा दूँगा।' अल्ताफ चचा फिर खामोश हो गए और उनका माप लेने लगे।

'लेकिन सदर साहब, इतने लंबे कुर्ते पहनने की कुछ तो वजह होगी?' देर तक यूँ ही खड़ा रहने के बाद मैंने अपनी मौजूदगी दर्ज कराई।

'वजह है नसीम मियाँ, वजह है!' उन्होंने मेरी तरपफ देखते हुए कहा - 'हाजी बदर को जानते हो... बरेली शरीपफ वाले, जो डिवीजनल सदर हैं, पिछले साल वो जमात ;धर्म-प्रचारद्ध में इंग्लैंड गए हुए थे। वहाँ जानते हो ईसाइयों ने उनके लंबे कुर्ते को देखकर क्या कहा?'

'क्या कहा**?**' मैंने उसी अदब में पूछा।

'पहले तो ईसाइयों ने उनके कुर्ते को आँखों से लगा लिया, फिर ओठों का बोसा देकर बोले कि उन्हें ये लिबास देखकर हजरत ईसा की याद आ गई...' बोलते-बोलते सदर साहब, यकायक न जाने कहाँ गुम हो गए। कुछ मिनटों के बाद उनकी आवाज सुनाई पड़ी, उन्हीं गुमशुदा जजीरों से लौटती हुई - 'मियाँ, सच्चा मोमिन तो वही है जिसके अ-माल; कर्मों से ही नहीं बल्कि बातचीत, रख-रखाव और लिबास से भी रसूल-ए-दीन की नुमाइंदगी हो।'

मेरे साथ अल्ताफ चचा भी उनकी बात ध्यान से सुनने लगे थे। कुछ देर के बाद उनकी सफेद कार गली से निकलकर सड़क पर पहुँच चुकी थी। लेकिन उनकी बातें सोच के

बाहरी सागर में अभी तक कंपन पैदा कर रही थीं। यही वजह थी, मैं और अल्ताफ चचा भी अभी तक चुप थे।

मैं सिलाई करते हुए अल्ताफ चचा की बारीकी और महीनी देखने लगा था। हेम या तुरपाई करते वक्त ऐसा जान पड़ता है जैसे सूई और उनकी उँगलियाँ लुका-छिपी का खेल खेल रही हों। मैंने ढेर होते हुए खामोशी के गर्द को झाड़ते हुए पूछा, 'चाचा, इतनी अच्छी कारीगरी आपने सीखी कहाँ से?'

'सीखी कहाँ से...?' हिस्बे-मामूल उन्होंने सवाल को दोहराते हुए कहा - 'सब अल्लाह का करम है नसीम मियाँ, वो जिसे चाहता है, उसे नवाजता है... इल्म से, दौलत से, फन से!'

हर एक सवाल के बदले में उनका यही जवाब मुझे पसंद नहीं आता। यह क्या कि हर किए न किए का क्रेडिट वही अल्लाह मियाँ ले जाएँ! मानता हूँ कि वो है तो अल्ताफ चचा हैं। उनकी कारीगरी, उनका फन है। इतनी बड़ी दुनिया और पूरी कायनात है, फिर भी यह जवाब मुझे माकू या पूरा नहीं जान पड़ता। अगर ऐसा ही है, तो फिर इनसान जो अशरफुल मखलूकात; ईश्वर की श्रेष्ठ कृति है, वो भी कोई चीज है कि नहीं।

मेरी बिगड़ी हुई सूरत देखकर अल्ताफ चचा को मेरी कैफियत का अंदाजा हो गया। वह मुझे समझाने लगे, जैसे मैं भी कोई ग्राहक होऊँ, 'नसीम मियाँ, तुम नौजवानों के साथ यही परेशानी है, हर जगह अपनी टाँग का इस्तेमाल करते हो। मैं भला इसे खुदा की मेहरबानी न कहूँ तो क्या कहूँ! लोग इस गली के भीतर भी मुझे पूछते-पाछते आ जाते हैं। इस टीन के बोर्ड पर लिखा हुआ 'जुगनू टेलर' अब दिन में भी पढ़ा नहीं जाता। और देखो वही हसनैन की दुकान, जो सड़क पर है, अच्छा फर्नीचर है, फिर भी कितने लोग पूछते हैं उसे?'

'यह बात अलग है चचा!' मैंने चिढ़कर कहा - 'तुम कपड़े अच्छे सिलते हो इसलिए लोग तुम्हारे पास आते हैं, और उनके यहाँ एक भी कारीगर अच्छा नहीं है, ठीक ढंग से कटिंग भी नहीं आती उन्हें तो दुकान क्या खाक चलेगी!'

'तुम गलतपफहमी में हो, भूखों नहीं मर रहा है वह भी। अच्छा खाता-पीता परिवार है... दोनों बेटे कॉलेज में पढ़ रहे हैं।'

'यह सब मकान के किराए के बल पर चलता है, दुकान से नहीं! समझे आप...'

'तुम बिना वजह बिगड़ जाते हो।' वह सूई में धागा डालते हुए कुछ ऊपर देखते हुए कहते हैं - 'हसनैन मुझसे उन्नीस नहीं है। उसने भी मेरे साथ ही काम सीखा था, हुनर है उसके पास भी। अब यहाँ ये है कि खुदा ने उसे इतनी ही अक्ल से नवाजा है।'

'अक्ल!' मैंने उन्हें गौर से देखा, उनके पुरसुकून चेहरे की ओर - 'हसनैन को यह अक्ल किसने बताई है कि हर वक्त तुम्हारे पीछे लगे रहें... कभी बिजली कटवा दें, कभी इस दुकान का रास्ता बंद करने की बात करें! अभी पिछले हफ्ते की बात है, वह सदर साहब से कह रहे थे कि आपकी दुकान की वजह से न जाने कैसे-कैसे लोग मुहल्ले के भीतर घुस आते हैं...'

मुझे अंदाजा था कि अल्ताफ चचा यह सुनकर कुछ परेशान हो जाएँगे, लेकिन ऐसा हुआ नहीं। वह पहले की तरह अपने काम में मसरूफ रहे। सूई के साथ लंबे धागे को उन्होंने पीछे खींचते हुए कहा, 'अब मियाँ तुम पुरानी बात ले बैठे। वैसे मैं तुम्हें बता दूँ कि इससे मुझे या मेरी दुकान को कोई फर्क पड़ने वाला नहीं है। तुमने वह शेर सुना है न, मुद्दई लाख बुरा चाहे तो क्या होता है...'

शेर पूरा होने से पहले अजान की आवाज सुनाई पड़ने लगी। मैं चुपचाप उठ खड़ा हुआ। जानता था कि अब अल्ताफ चचा रुकेंगे नहीं। नमाज के वक्त उनको कुछ और पसंद नहीं। लाख जरूरी काम हों, दुकान उस वक्त बंद ही हो जाती है। वह तो अच्छा है कि मस्जिद की दीवार से लगी हुई दुकान भी है। अगर मस्जिद दूर होती, तो वह दिन भर में तीन-चार घंटे ऐसे ही दुकान बंद कर देते। कहते हैं कि जमात के साथ नमाज अदा करने से सबाब; पुण्य कई गुणा बढ़ जाता है।

सारिक आता हुआ दिखाई पड़ा - अल्ताफ चचा का दस साला बेटा। मुझे देखकर वह ठहर गया, 'अस्सलामो अलैकुम भाई जान!'

'खुश रहो... कैसे हो बड़े मियाँ!' मेरी निगाह उसके अपंग पाँव और बैसाखी पर पड़ती है। उसने बैसाखी की बाँह पर सिर टिकाए हुए कहा, 'ठीक हूँ, लेकिन भाई जान, सलाम के जवाब में खुश रहो तो नहीं कहा जाता!'

'कहा जा सकता है, अपने से छोटों के लिए।' मैंने बताया तो उसने मुस्कुराते हुए हामी भरी और मस्जिद की ओर चल पड़ा।

छोटी-छोटी चीजें कितनी अच्छी लगती हैं। छोटा घर, छोटी कारें, छोटे-छोटे खिलौने... बच्चे, लेकिन यह छोटी-सी बैसाखी, उफ! पता नहीं क्यों मैं इसे नहीं देख सकता। मैंने जब से सारिक को देखा है, मुझे बैसाखी से ज्यादा बदसूरत और कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। न अपनी क्लर्की वाली यह जिंदगी, न यह गंदा मुहल्ला, न यहाँ की झगड़ालू औरतें, न वह फीलखाना; जहाँ गाय, भैंस और बकरियों के गोश्त बेचे जाते हैं और न हसनैन मियाँ, जो किसी तरह से अल्ताफ चचा की दुकान यहाँ से हटवाना चाहते हैं। हाँ, मुझे इन सबसे ज्यादा बदसूरत और हैवतनाक लगती है सारिक की यह छोटी-सी बैसाखी।

सारिक को मैंने आज तक किसी बच्चे के साथ खेलते हुए नहीं देखा है। भला एक पाँव से वह कौन-सा खेल खेल सकता है। न जाने कितने पीर-फकीर और मजारों की मिन्नत-समाजत के बाद वह पैदा हुआ था। वह भी तब, जब अल्ताफ चचा इस जानिब से मायूस हो चुके थे। लेकिन जल्दी ही डॉक्टरों ने उसके एक पाँव को अपंग बता दिया। और वह बैसाखी पर झूलकर चलने लगा।

अल्ताफ चचा को फिर भी गम नहीं था। हालाँकि वह कभी-कभी फिक्रमंद जरूर हो जाया करते थे। तब कहते कि खुदा जरूर इसकी खबर भी लेगा, मैंने उम्मीद नहीं छोड़ी है। शायद यही सोचकर उन्होंने सारिक को भी इबादत पसंद बना दिया था। रोजे-नमाज का पाबंद। बल्कि सारिक इस मामले में उनसे एक कदम आगे रहता था। मदरसे से छूटने के बाद भी वह मस्जिद में ही सारा वक्त गुजारता। वहाँ की सफाई और झाड़-बुहार में लगा हुआ रहता। माइक की अजान की आवाज भी अक्सर उसी की सुनाई पड़ती, जो बेहद सुरीली हुआ करती थी। इतना सही और साफ तलफ्फुज; उच्चारण! लोग हैरत से उसे देखते और अल्ताफ चचा पर रश्क करते। इतनी कम उम्र

में यह कोई मामूली बात न थी। उसकी लगन और जहनीयत को देखकर एक दिन मैंने अल्ताफ चचा से कहा, 'आप इसे स्कूल में क्यों नहीं डाल देते... बड़ा जहीन लड़का है।'

'अब पढ़-लिखकर इसे कौन सी नौकरी करनी है।' अल्ताफ चचा ने अलसाई हुई आवाज में कहा था - 'अपना खानदानी पेशा है ही... यह कौन सा बुरा है!'

'बुरा नहीं चाचा, लेकिन अच्छे मुस्तकबिल के लिए अच्छी तालीम भी जरूरी है।'

'उसके अच्छे मुस्तकबिल के लिए मैंने यह जमीन खरीदी है। कल इसकी कीमत लाख रुपये से कम न होगी।'

'वह तो ठीक है चाचा, लेकिन सारिक के लिए तुम्हें और कुछ करना चाहिए।'

'हाँ, मैं इस तरफ से गाफिल नहीं हो गया हूँ। सोच रहा हूँ कि दो कमरों की नींव डाल ही दूँ और इस दुकान की भी पक्की ढलाई कर दूँ।'

'नींव और पक्की दुकान!' मैंने दुकान के पीछे उनकी कोठरी और थोड़ी-सी जमीन को देखा। उसमें दो मजदूर खुदाई का काम कर रहे थे - 'इरादा तो आपका नेक है। मगर मैंने तो सुना है कि मस्जिद तोड़कर बढ़ाई जा रही है और आप अपनी जमीन उसी में दे रहे हैं।'

'ऐसा तो मैंने सोचा नहीं है।' उन्होंने मजदूरों की ओर देखते हुए कहा - 'मैंने सिर्फ मस्जिद की नाली के लिए जगह दी है, वह भी कुछ ही दिनों के लिए... जब तक मस्जिद का काम पूरा नहीं हो जाता।'

'ऐसी बात है तो ठीक है लेकिन मैंने यही सुना था।'

'यह बात तुमसे कही किसने**?**' उन्होंने चश्मे के भीतर से मुझे देखा।

'हसनैन भाई ने मुझसे कहा था।'

'तुम बेफिक्र रहो, मैंने यह जमीन सिर्फ सारिक के लिए खरीदी है।' वह नया धागा मशीन पर चढ़ा रहे थे - 'लेकिन मुझे समझ में नहीं आता कि हसनैन ने यह बात कही क्या सोचकर!'

'मुझे तो इसमें भी कोई चाल नजर आती है।' मैंने उठते हुए कहा - 'न हो तो आप एक बार सदर साहब से मिल लीजिए... वे जल्दी ही मस्जिद की नई बुनियाद डालने वाले हैं।'

पता नहीं अल्ताफ चचा ने सदर साहब से फिर मुलाकात की या नहीं, लेकिन मेरा सदर साहब से मिलना जरूरी हो गया क्योंकि मैं हसनैन मियाँ के जिस कमरे में किराए पर रहता था, उसी के सामने से बड़ी नाली बहती थी। और उसके आगे मस्जिद की पुरानी दीवार अब तोड़ी जा रही थी, जिसके कारण नाली का आगे बहना अब बंद हो गया था। नाली का रुख अगर मोड़ा जाता तो वह सीधे अल्ताफ चचा की दुकान में जा घुसती। ऐसी सूरत में हसनैन मियाँ ने एक कुएँ जैसा गड्ढा खुदवा दिया था जिसमें नाली आकर गिरने लगी थी और वह गड्ढा ठीक मेरे कमरे के सामने था। पिछले कई दिनों से वह बदबू करने लगा था। यूँ तो हसनैन मियाँ के कई किराएदार थे, लेकिन गड्ढा ऐन मेरे दरवाजे के सामने था। इस वजह से सबसे ज्यादा तकलीफ मुझे हो रही थी। दोपहर के वक्त भी मशहरी के भीतर बैठना पड़ता और कई बार मैं उसमें गिरते-गिरते बचा था। बच्चों पर जब भी खुशी या गुस्से का दौरा पड़ता, वे जरूरी चीजें उसी में डाल आते।

सदर ओबैस साहब से मिलना उन दिनों काफी मुश्किल हो गया था। एक तो उनका मकान मुहल्ले से काफी दूर था, शहर के बिल्कुल दूसरे छोर पर। दूसरे, जब भी उनके यहाँ जाता, यही मालूम पड़ता कि वे चंदे के सिलसिले में बाहर गए हुए हैं। आखिर एक दिन उनसे मुलाकात हो ही गई। वह एक नक्शे पर झुके हुए कुछ सोच रहे थे। रस्मी गुफ्तगू के बाद उन्होंने नक्शे को कुछ और गौर से देखते हुए कहा, 'नसीम मियाँ, जरा इस नक्शे को देखो। मस्जिद का है। शहर के सबसे महँगे आर्किटैक्ट से मैंने बनवाया है।' ऊँची मीनार और दो छतरीनुमा गुंबदों वाला नक्शा वाकई खूबसूरत था। मैंने तारीफ की तो उन्होंने कहा - 'पैसे का इंतजाम लगभग हो गया है। इंशा अल्ला दो एक दिन में काम भी शुरू हो जाएगा। फिर जुम्मे की नमाज क्या ईद और बकरीद की

नमाज भी हम अपनी मस्जिद में अदा कर सकेंगे।' उन्होंने नक्शे को बंद करते हुए पूछा - 'तुम्हारा क्या खयाल है, हजार पाँच सौ आदमी तो रह ही सकते हैं मस्जिद में?'

'जी हाँ, आराम से! मुझे तो इसमें कोर्द तरद्दुद नजर नहीं आता...'

'हाँ तो फिर सबसे बढ़कर ये होगा नसीम मियाँ कि मैं यहाँ आलमी इज्तेमा (अंतराष्ट्रीय स्तर पर धर्माचार्यों का इकट्ठा होना) रख सकूँगा। बरेली वालों को दिखा देना है कि मैं भी किसी अदारे का सदर हूँ...' बोलते-बोलते उनका चेहरा नामालूम तनाव से घिर गया - 'इंग्लैंड न जा सका तो क्या हुआ!'

'लेकिन सदर साहब, मैं दूसरे काम से आपके पास आया था।'

'वो क्या?' उन्होंने रीज से पानी की बोतल निकालते हुए पूछा।

'आपने मेरा कमरा तो देखा है न, जो हसनैन भाई के पिछवाड़े में है। मुहल्ले की सभी नालियाँ आजकल वहीं जमा हो रही हैं। वहाँ चारों तरफ गंदगी फैल गई है। न मुहल्ले के लोग उसकी सफाई का इंतजाम कर रहे हैं और न हसनैन भाई ही कुछ करने के लिए राजी होते हैं... मेरी तो हालत बुरी हो गई है!'

'यह कोई बड़ा मसला नहीं है।' ढेर सारा पानी उनके मुँह में जमा हो गया था। वे उठकर बालकनी पर चले आए। वहीं से कुल्ला करते हुए बोले - 'मैं मस्जिद के काम से फारिग हो लूँ तब इस तरफ ध्यान दूँगा।'

'मस्जिद बनने में तो साल छह महीने लग जाएँगे सदर साहब!' मैं भी उठकर उनके पास चला आया - 'तब तक तो नाली मेरे घर में बहने लगेगी...'

'ऐसी नौबत नहीं आएगी।' वह भीतर आकर फिर से नक्शे को देखने लगे - 'ये मसला भी हल हो जाएगा। लेकिन मेरी सलाह है कि तुम इस वक्त इस मामले को मत उठाओ। पहले मस्जिद का काम पूरा हो जाने दो... इस नेक काम में खलल मत डालो!'

'खलल!' न जाने मेरे गुस्से को मेरे जिस्म का कौन-सा हिस्सा पी गया। मेरी आवाज पहले की तरह ही निकली, नरमी की पटरियों पर रेंगते हुए - 'मैं खलल डालने की

नीयत से नहीं बोल रहा हूँ सदर साहब... मेरी मजबूरी को समझने की कोशिश कीजिए, वो नाली...'

'नाली... नाली...! मैंने सभी का रास्ता निकाल लिया है।' वे झुँझलाते हुए बोले - 'लेकिन तुम क्या चाहते हो कि मैं मस्जिद का काम छोड़कर पहले नाली के लफड़े में पड़ूँ! देखो, तुम इस वक्त जाओ और मुझे अपना काम करने दो। फिर नाली की बात करना।'

मैं अपना-सा मुँह लेकर उठ पड़ा। लगा जैसे उस गड्ढे की बदबू बालकनी से होते हुए वहाँ भी घुस आई है। वे नाक के पास इत्र मलने लगे थे।

सदर साहब से मिलकर लौटने के बाद कई बार सोचा कि गड्ढे को खुद ही साफ करवा दूँ लेकिन घनी आबादी वाले मुहल्ले में उसके कचरे को कहीं फेंकने की भी तो जगह नहीं थी। तंग गलियों में जमादार भी आने के लिए तैयार नहीं हुए। कारपोरेशन का दरवाजा खटखटाया तो बताया गया कि मकान-मालिक की अर्जी पर कारवाई हो सकती है। मैंने यह बात हसनैन भाई से कही तो उन्होंने कारपोरेशन के झमेले में पड़ने से साफ इनकार कर दिया। एक-दो बार मेरे हो-हल्ला करने पर उन्होंने आखिरी फैसला सुना दिया कि मैं मकान छोड़कर जा सकता हूँ। हारकर मैं अपनी बीवी को बच्चों के साथ मायके छोड़ आया और बाकी लोगों के साथ मैं भी मस्जिद के बनने का इंतजार करने लगा।

नाली की बदबू ने मुझे जहनी तौर पर थका दिया था। मुहल्ले की सभी मुर्गियाँ दिन भर वहीं पंख फड़फड़ाती रहतीं। रात के वक्त पता नहीं किधर से तीन-चार सुअर भी चले आते। और सुबह होने तक उसी गड्ढे में शोर मचाते रहते। जहाँ भी जाता, लगता नाली और उसकी बदबू मेरे पूरे वजूद से लिपटी हुई है। सिर भारी-भारी लगता। कुछ खाने बैठता तो वही गड्ढा आँखों में गहराने लगता।

उस दिन कई दिनों के बाद मैं अल्ताफ चचा की दुकान पर गया था। वहाँ ओबैस साहब दो-चार दूसरे लोगों के साथ पहले से मौजूद थे। वह अल्ताफ चचा से कह रहे थे, 'अल्ताफ मास्टर, दुनिया के लिए आपने बहुत कमा लिया, बहुत बना लिया। अब कुछ

आखिरत के बारे में भी सोचिए... मस्जिद की जमीन देने का सवाब आपको मरने के बाद भी मिलता रहेगा।'

'आपने बजा पफरमाया सदर साहब।' अल्ताफ चचा ने कहा - 'लेकिन आप मेरी पूरी जमीन माँग रहे हैं! फिर मैं क्या करूँगा? रहूँगा कहाँ... और दुकान!'

'दुकान आपको मैं दिलवाऊँगा अल्ताफ भाई।' हसनैन मियाँ ने आगे आकर कहा - रही मकान की बात, तो दूसरा इंतजाम होने तक आप मेरे मकान में रह सकते हैं। लेकिन आप इस नेक काम में कोताही मत कीजिए!'

'कोताही मत कीजिए!' अल्ताफ चचा अपने स्वाभाविक रूप में आ गए। उनकी आँखें गोया चश्मे से बाहर निकल आईं - 'सदर साहब, मैं भी इस फजीलत को समझता हूँ। लेकिन इस वक्त मैं कुछ नहीं कह सकता। मैं कुछ दिन सोचने की मोहलत चाहता हूँ।'

'खुदा की राह में एक छोटी-सी कुर्बानी के लिए भी आपको सोचना पड़ रहा है... अस्तगफेरुल्लाह-अस्तगफेरुल्लाह...' उन्होंने चाँदी की डिबिया से पान निकालते हुए कहा - 'ठीक है, आप सोचिए। खुदा आपको सोचने की तौफीक दे। लेकिन जितनी जल्दी हो सके अपने पाक मशवरे से मुझे इत्तला कर दीजिएगा, ताकि काम आगे भी जारी रह सके। मैंने तो सोचा था कि... खैर...' वह उठकर खड़े हो गए। उनकी नजर मुझ पर पड़ी। दुकान से निकलते हुए उन्होंने धीरे-से कहा - 'नाली की बात मैं भूला नहीं हूँ नसीम मियाँ, तुम जरा अल्ताफ मास्टर को समझाओ। सुना है तुम्हारी खूब बनती है इनसे।'

मैं दूर तक उन लोगों को जाते देखता रहा।

अल्ताफ चचा अनमने ढंग से अपने काम में लगे हुए थे। सूई और उँगलियों का खेल आज बेहद उबाऊ जान पड़ा।

'आओ बैठो, आखिर तुम्हारी बात सच निकली।' उन्होंने मशीन पर झुके-झुके कहा।

'हूँ...' मेरे मुँह से लंबी साँस निकली, जैसे मीलों चलकर आया हूँ। उन्होंने फिर कहा - 'अच्छा, एक बात बताओ, जमीन कोई जबर्दस्ती तो मुझसे नहीं ले सकता न?'

'नहीं बिल्कुल नहीं!' मैंने ठीक ढंग से बैठते हुए कहा - 'यह शरीअतन नाजायज होगा, मजहबी कामों में जोर-जबर्दस्ती की मनाही है। और यही एक वजह है चाचा कि आपकी जमीन अभी तक महफूज है। नहीं तो नक्शे के मुताबिक आपकी जमीन पर ही मस्जिद की सहन खड़ी होगी।'

यह सुनकर वह बेचैन हो गए। काम करना उन्होंने बंद ही कर दिया, 'लेकिन मैं अपनी जमीन दूँगा तभी तो... और फिर सदर साहब ने मुझसे पूछे बिना नक्शा कैसे बनवा लिया?'

'उन्होंने सोचा होगा कि आप मना नहीं करेंगे।'

'मना तो मैं सचमुच नहीं करता नसीम बेटे, मौलवी साहब ठीक ही कह रहे थे कि आखिरत सँवर जाती, लेकिन जब सारिक की सूरत देखता हूँ तो मजबूर हो जाता हूँ कि फिर उसकी जिंदगी बरबाद हो जाएगी !'

'सो तो है।' मैंने बात बदलने के मकसद से पूछा - 'सारिक है कहाँ? आजकल दिखाई नहीं देता।'

'मस्जिद में होगा, मौलवी साहब उसे हिज्जे (कलामे-पाक जबानी याद करना) करवा रहे हैं। दो पारे मुकम्मल हो चुके हैं।' सोच की लकीरों की जगह उनके चेहरे पर चमक की परछाइयाँ दिखाई पड़ने लगीं। मैंने उन्हें बरकरार रखने की कोशिश करते हुए कहा - 'लगता है उसे आप पूरा हाफिज बनाकर ही छोड़ेंगे!'

'मैं कौन होता हूँ बनाने वाला, सब कुछ खुदा की जात पर मुनहसर है।'

'लेकिन जमीन के मामले में सब कुछ आप पर मुनहसर है चाचा...' न चाहते हुए भी जमीन की बात फिर निकल आई। वह फिर से बेचैन हो गए। लग रहा था वह पशो-पेश में पड़े हुए हैं। बहुत देर तक वह मेरी तरफ यूँ ही देखते रहे। मैं भी कुछ बोल नहीं पा

रहा था। कुछ देर के बाद अचानक उन्होंने कहा, ऊँची आवाज में, जैसे वहाँ कई लोग हों, 'जो भी हो जमीन मैं नहीं दूँगा।'

अगले दिन ओबैस साहब ने मशविरा रखा, जमीन के बाबत ही। मगर अल्ताफ चचा ने भरी मजलिस में उनकी पेशकश को ठुकरा दिया। उनको कई तरह से समझाया मनाया गया लेकिन वह टस से मस नहीं हुए। ओबैस साहब ने फिर बिना किसी ऐलान के मजलिस बर्खास्त कर दी।

दूसरे ही दिन से मस्जिद का काम रुक गया। टूटी हुई पुरानी दीवारों के मलबे जहाँ थे, वहीं छोड़ दिए गए। और इस बात की चर्चा जोर-शोर से होने लगी। न जाने कितने-कितने लोग अल्ताफ चचा के पास आने लगे। लेकिन उन सबको वह यही जवाब देते कि जमीन वह किसी कीमत पर नहीं देंगे। बहुत सारे लोग उनको भला-बुरा कहने लगे थे। हसनैन मियाँ ने उनके सामने ही कह दिया, 'ऐसे-ऐसे भी लोग हैं कि सिर सिजदे में और दिन दगाबाजी में!'

सलीम नाई ने तो यहाँ तक कह दिया कि अल्ताफ खलीफा अब सच्चे मोमिन नहीं रहे, ऐसे आदमी पर फतवा जारी होना चाहिए। कुछ नौजवानों ने जोर-जबर्दस्ती की बात भी करना चाही। ओबैस साहब ने उनको रोकते हुए कहा, 'मियाँ, ये तो अपने-अपने अकीदत की बात है। हमारा काम तो सिर्फ समझाना ही है। रही अल्ताफ मास्टर की बात तो वक्त आने पर वो खुद इसे समझ जाएँगे...'

इधर वह गड्ढा अब पूरा भर चुका था। गंदा पानी मेरे दरवाजे तक बहने लगा था। किसी तरह ईंट वगैरह डालकर मैंने उसे रोक तो दिया था, लेकिन दूसरे मकान की तलाश में भी लग गया था। क्योंकि मस्जिद का काम बंद हो जाने से रही-सही उम्मीद भी खत्म हो चुकी थी। ओबैस साहब के पास दोबारा जाने की हिम्मत नहीं हुई। सुनने में आया था कि वे मुझसे भी नाराज थे। हसनैन मियाँ ने जब यह बात मुझे बताई तो सर्द-मोहरी से मैंने कहा, 'मैं भला जमीन के मामले में क्या कर सकता था! अल्ताफ चाचा समझें और ओबैस साहब। लेकिन मैं इतना जरूर कहूँगा कि नाली का मामला भी उतना ही जरूरी और अहम था जितना कि मस्जिद का।'

'तुम्हें अब उसकी परवाह करने की जरूरत नहीं है।' हसनैन मियाँ ने खिलाफ-ए-मामूल मुझे उम्मीद दिलाते हुए कहा - 'नाली का मसला हल हो चुका है। कल उसे कारपोरेशन के नाले में गिरा दिया जाएगा।'

'कारपोरेशन के नाले में**!**' मैं थोड़ा चौंका **-** 'लेकिन वह तो दूर है**,** और उसके पहले अल्ताफ चाचा की दुकान है**!**'

'है तो भला मैं क्या करूँ? आखिर मैं ही कब तक मुहल्ले भर की गंदगी को अपने घर में रखूंगा... अल्ताफ मियाँ अपना कोई रास्ता निकाल लेंगे।'

'लेकिन ओबैस साहब की इजाजत**...?**'

'वो इसमें क्या करेंगे? इसे भुगत कौन रहा है, मैं और तुम न!' उन्होंने फिर बेहिचक कहा - 'कोई मस्जिद के लिए जमीन नहीं दे सकता और मैं नाली के लिए अपना घर बरबाद कर लूँ!'

'आप सही पफरमाते हैं।' कई दिनों के बाद मुझे गड्ढे की ओर से राहत महसूस हुई - 'लेकिन अल्ताफ मास्टर ने उसे रोक दिया तो?'

रोक कैसे देंगे! नाली का रास्ता रोकना कानूनन जुर्म है। मैं कारपोरेशन वालों से बात कर चुका हूँ। अब अल्ताफ मास्टर के हाथ में है कि...' हसनैन भाई आधी बात बोलकर चुप हो गए।

'लेकिन उनकी दुकान और घर**...** क्या होगा इन सबका**?**'

'मियाँ तुम समझदार आदमी हो।' उन्होंने सरगोशी करते हुए कहा - 'और समझदार आदमी आम खाते हैं, पेड़ नहीं गिना करते।' थोड़ी देर पहले मिली राहत न जाने कहाँ गुम हो गई। अल्ताफ चचा और बात-बात पर उनका शरई, सारिक और अजान की उसकी सुरीली आवाज, ये सब जेहन के संदूक में मंद-मंद जगमगा रहे थे... पुराने मोती की तरह। और मैं घर पहुँचते-पहुँचते न जाने कितनी महरूमियों, और कितने जिंदा-मुर्दा एहसासों के कब्रिस्तान से गुजर गया। अल्ताफ चचा भी वहीं मिल गए।

उसी गड्ढे को गौर से देखते हुए। मैंने उनके कंधे पर हाथ रखकर पूछा, 'चाचा, आप यहाँ... सब खैरियत तो है!'

'सब खैरियत है!' उन्होंने मुझे तरेरकर देखा - 'मुझे उजाड़ने की साजिश की जा रही है! कुछ पता है तुम्हें?'

'हुआ क्या, सो तो बताइए...' मेरी चोर-सी आवाज निकली।

'हुआ क्या!' वह कंधे पर से मेरी हथेली को हटाते हुए बोले - 'मैं सबको देख लूँगा... सबको, लेकिन जमीन को हाथ लगाने नहीं दूँगा...' पता नहीं वह और क्या-क्या बड़बड़ाते हुए चले गए। मैं बर्फ की तरह वहीं का वहीं जमा रहा। कुछ बोलने के लिए लफ्ज ही न मिले।

दूसरे दिन बहुत सुबह, तब सुबह भी कहाँ हो पाई थी। न भोर का उजाला, न अजान की आवाज, न मुर्गे की बाँग। कुछ भी तो सुनाई नहीं पड़ी थी। शायद रात का आखिरी पहर था जब सोए-सोए मुझे धम्म-धम्म की आवाज सुनाई पड़ी। बदबू के ताजा-ताजा झोंकों से बची-खुची नींद भी उड़ गई। मैंने खिड़की से झाँककर देखा - सर्दी, कोहरा और मटमैली चाँदनी के बीच कोई जोर-जोर से फावड़ा चला रहा था। और तमाम नालियाँ अल्ताफ चचा की दुकान की ओर बही जा रही थीं। मैंने पहचानने की कोशिश की, कि कौन हो सकता है? हसनैन मियाँ, उनका लड़का... या कोई और? मैंने ध्यान से देखा, फावड़ा चलाने वाला आदमी पहचान में नहीं आ सका। जब्त न हुआ तो उठकर उसके करीब चला आया। उस आदमी पर नजर पड़ते ही जैसे मुझ पर बिजली गिरी, 'अल्ताफ चचा आप! ये आप क्या कर रहे हैं...'

'क्या कर रहा हूँ?' उन्होंने घूरकर मुझे देखा और मेरा सवाल मुझ पर ही दाग दिया - 'देखते नहीं, जालिमों ने सभी नालियाँ मेरी दुकान की तरफ मोड़ दी हैं!'

नालियों को रोकने की वह नाकाम कोशिश कर रहे थे। वह जहाँ फावड़ा चलाते, नालियाँ वहीं पसर जातीं। ढेर सारी मिट्टी उन्होंने वहाँ लाकर रखी। मगर बहुत दिनों से रुका हुआ गंदा पानी उसे भी अपने साथ बहाकर ले गया। तभी अजान की आवाज

सुनाई पड़ी। मैंने उनको रोकते हुए कहा, 'चाचा, नालियाँ ऐसे नहीं रुकेंगी... इस वक्त चलिए, नमाज का वक्त हो गया है।'

'नमाज की कुंजी सफाई है, समझे! इसलिए पहले इसी का इंतजाम करना होगा!' बोलते-बोलते उन्होंने फावड़ा मेरे हाथ से छीन लिया।

उसी समय बदबू और सर्दी से भरा हुआ एक और झोंका आया, जो हड्डियों तक में सिहरन पैदा कर गया। कंबल से लिपटे होने के बावजूद वहाँ और खड़ा रहना मुश्किल जान पड़ा। मैंने एक बार फिर अल्ताफ चचा की ओर देखा। वह मदहोशी के आलम में फावड़ा चलाए जा रहे थे, पता नहीं क्यों फिर उन्हें रोक नहीं सका। हिम्मत ही नहीं थी या जरूरत, कुछ साफ न हो सका। बस सोचता ही रहा कि अल्ताफ चचा जमीन के उस छोटे-से टुकड़े में से किस-किसकी गंदगी और कीचड़ को आने से रोक सकेंगे? बदबू और नालियाँ भी तो कितनी हैं!